National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(65): 20-24
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

अनु देवी
शोधच्छात्रा, संस्कृत-विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्विद्यालय,
समरहित, शिमला-171005

डॉ.सपना चन्देल
शोध-निर्देशक, संस्कृत-विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
समरहित, शिमला-171005

Correspondence:
अनु देवी
शोधच्छात्रा, संस्कृत-विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्विद्यालय,
समरहित, शिमला-171005

पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री के काव्यों में बाल-विवाह : राष्ट्रोन्नति पर बाधक तत्व के रूप में

अनु देवी, डॉ.सपना चन्देल

शोधसारांश :

प्रस्तुत शोध-पत्र में पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री के काव्यों के आलोक में बाल-विवाह को एक ऐसी सामाजिक कुरीति के रूप में विश्लेषित किया गया है, जो व्यक्ति के समग्र विकास तथा राष्ट्रोन्नति दोनों के मार्ग में गम्भीर बाधा उत्पन्न करती है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में विवाह को पवित्र संस्कार और सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में स्वीकार किया गया है, परन्तु उसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं कि बाल्यावस्था में ही बच्चों पर गृहस्थ जीवन का बोझ डाल दिया जाए। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि बाल-विवाह न तो प्राचीन वैदिक परम्परा का अनिवार्य अंग रहा है और न ही शास्त्रों द्वारा सर्वसम्मत रूप से समर्थित, बल्कि यह एक परवर्ती सामाजिक विकृति है।

शोध-पत्र में शास्त्री जी के काव्य-प्रसंगों के माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि बाल-विवाह बालक को मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, शैक्षिक तथा भावनात्मक इन चारों स्तरों पर गम्भीर रूप से प्रभावित करता है।

अल्पायु में विवाह होने से बालक का मानसिक सन्तुलन भंग होता है, शिक्षा में व्यवधान उत्पन्न होता है, सामाजिक उपहास और आत्मग्लानि का भाव जन्म लेता है तथा उसका स्वाभाविक बालपन नष्ट हो जाता है। कवि द्वारा चित्रित पात्र 'मनोज' के जीवन-प्रसंग इस त्रासदी को अत्यन्त मार्मिक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

इसके अतिरिक्त, शोध में यह भी रेखांकित किया गया है कि बाल-विवाह निर्धन परिवारों के लिए आर्थिक विनाश का कारण बनता है। सामाजिक प्रतिष्ठा और रूढ़ परम्पराओं के दबाव में लिया गया ऋण व्यक्ति की स्वतन्त्रता को छीन लेता है और उसे आजीवन दुःख एवं पराधीनता में जकड़ देता है। शास्त्री जी के काव्य में साहूकार और ऋणी ब्राह्मण का चित्रण इस कटु यथार्थ को उजागर करता है।

सार रूप में यदि कहें तो यह शोध-पत्र यह प्रतिपादित करता है कि पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री ने अपने काव्य के माध्यम से बाल-विवाह को केवल एक सामाजिक दोष नहीं, बल्कि राष्ट्र की ऊर्जा और भविष्य को क्षीण करने वाली प्रवृत्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि का स्पष्ट संदेश है कि राष्ट्र की सुदृढ़ नींव तभी सम्भव है जब बाल्यावस्था को शिक्षा, संस्कार और व्यक्तित्व-निर्माण का काल माना जाए, न कि विवाह और असमय दायित्वों का।

कूटशब्द : बाल-विवाह,पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री,राष्ट्रोन्नति,सामाजिक कुरीति,भारतीय सांस्कृतिक परम्परा, विवाह-संस्कार, शास्त्रीय दृष्टि, बाल-मनोविज्ञान, शिक्षा में बाधा, आर्थिक दुष्परिणाम, ऋणग्रस्तता, सामाजिक चेतना, नारी एवं बाल कल्याण, काव्यात्मक प्रतिरोध, राष्ट्रनिर्माण

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में विवाह हिन्दुओं के लिए एक आवश्यक संस्कार तथा पवित्र अनुष्ठान माना गया है। हिन्दू धर्मग्रन्थों में विवाह को केवल एक सामाजिक संस्था ही नहीं, बल्कि धर्मपालन और कर्त्तव्यनिष्ठ जीवन का महत्त्वपूर्ण दायित्व बतलाया गया है। यह माना गया है कि एक अविवाहित पुरुष अनेक धार्मिक अनुष्ठानों को पूर्ण रूप से सम्पन्न नहीं कर सकता। अतः भारतीय परम्परा में विवाह को धार्मिक कृत्यों की सिद्धि तथा सामाजिक प्रगति का पवित्र संयोग माना गया है। यह संयोग पतिव्रत के साथ-साथ जीवन भर अभिज्ञा है, जो पति की मृत्यु के बाद भी चलता रहता है।[1] किन्तु इस पवित्र सम्बन्ध का यह अर्थ कदापि नहीं है कि अभिभावक अपने बाल्यावस्था में ही बच्चों पर विवाह का दायित्व थोपकर उनकी मानसिक एवं शारीरिक क्षमताओं पर अनावश्यक दबाब उत्पन्न करें। किसी भी राष्ट्र की प्रगति का आधार उसके युवाओं की सशक्त एवं समग्र उन्नति पर निर्भर करता है, यदि वही युवा वर्ग विकास पूर्ण होने से पूर्व सामाजिक कुरीतियों में उलझ जाए, तो राष्ट्र की उन्नति स्वतः अवरूद्ध हो जाती है। बाल विवाह ऐसी ही एक घातक सामाजिक कुप्रथा है जो बालकों और विशेषतः बालिकाओं की शिक्षा, बौद्धिक शक्ति और शारीरिक प्रगति को समय से पूर्व ही बाधित कर देती है। बाल का अर्थ वह व्यक्ति है जो यदि पुरुष हो तो 18 वर्ष से नीचे की आयु का है और यदि स्त्री हो तो 14 वर्ष से कम आयु की है।[2] अतः 'बाल विवाह' का अर्थ वह विवाह होगा जिसमें विवाह करने वाले वर अथवा वधू में से कोई 'बाल' हो।[3] बाल विवाह के दुष्परिणामों को ध्यान में रखते हुए शारदा अधिनियम में स्पष्ट कहा गया है कि यह प्रथा राष्ट्र की जड़ों को खोखला कर देने वाली है।[4]

इस कुप्रथा के कारण असंख्य नवयुवक और नवयुवतियाँ अल्पायु में ही विपत्तियों के चक्र में फंस जाती है। छोटी-छोटी लड़कियाँ मातृत्व का भार वहन करने को विवश हो जाती हैं और आजीवन कष्ट सहती हैं।[5] अनेक अबोध माताएं प्रसवकाल में ही मृत्यु का ग्रास बन जाती हैं। भारत में ऐसी मृत्यु की संख्या वर्ष में लगभग दो लाख तक पहुंच जाती है। अर्थात् प्रति घंटा औसतन बीस माताएँ असमय मृत्यु को प्राप्त होती हैं और इनमें अधिकांश वे बालिकाएं होती हैं जो स्वयं अभी बच्चियां ही होती है।[6]

चन्द्रकरण शारदा ने शारदा अधिनियम के हिन्दी रूपान्तरण में बाल विवाह के विनाशकारी परिणामों को उजागर करते हुए लिखा है" मैं मनुष्यता के सिद्धान्तों और देश के व्यापक हित की दृष्टि से बाल विवाह निषेध के प्रश्न को स्वराज से भी अधिक महत्त्वपूर्ण विषय मानता हूँ और अक्सर बाल-विवाह करने वालों को शारदा कानून के अनुसार सजा करवाना अपना धर्म समझता हूँ।" लेखक के अनुसार इस प्रथा के कारण हमारी आने वाली पीढ़ियाँ अत्यधिक दुर्बल हो चुकी हैं। इसका प्रमाण विद्यालयों में विद्यार्थियों की स्वास्थ्य परीक्षा के अभिलेखों में मिलता है, जिनसे ज्ञात होता है कि युवाओं की शारीरिक स्थिति निरन्तर ह्रास को प्राप्त हो रही है। बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य-विधि का नाश हो जाने से युवाओं की शक्ति, सहनशीलता और राष्ट्र रक्षा की क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।[7] एक रिपोर्ट के अनुसार यह विवाह लड़कियों की शैक्षिक योग्यता और साक्षरता पर नकारात्म प्रभाव डालता है, जिससे उनके भविष्य में अच्छी तनख्वाह वाली नौकरियों के लिए प्रतिस्पर्धा करने के अवसर कम हो जाते हैं। इस विवाह से युवा माताओं और उनके बच्चों के स्वास्थ्य सम्बन्धी जोखिम भी बढ़ जाते हैं। अन्ततः यह महिलाओं की आवाज़ और अधिकारिता को कम कर सकता है, जैसे कि अतरंग साथी हिंसा और एच. आई.वी. सहित यौन संचारित संक्रमणों का जोखिम। इन प्रभावों से न केवल लड़कियों पर बल्कि उनके बच्चे और समग्र रूप से समुदायों और समाजों पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं।[8]

यदि इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए तो प्राचीन भारत में बाल विवाह जैसी कोई मान्य परम्परा नहीं थी। यद्यपि ऋग्वेद में विवाह की आयु का कोई निश्चित निर्देश प्राप्त नहीं होता, तथापि मन्त्रों का अध्ययन बताता है कि कन्याएँ परिपक्व आयु प्राप्त होने पर ही विवाह करती थीं। एक मन्त्र में कहा गया है कि स्त्री अपनी इच्छा के अनुरूप योग्य पुरुष को पति रूप में स्वीकार करती है।[9] जिससे स्पष्ट है कि उसका विवाह उसकी इच्छा पर आधारित होता था, जो बाल्यावस्था में सम्भव नहीं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में वधू को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि-

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याऽश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ।।
इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं सं सृजस्वाऽधा जिव्री विदथमा वदाथः ।।[10]

अर्थात् पूषा तूझे यहाँ से हाथ पकड़कर चलावें, आगे अश्वि देव तुझे रथ में बिठलाकर पहुंचावें। अपने पति के घर को जा वहाँ तू घर की स्वामिनी और सबको वश में रखने वाली हो। वहाँ तू उत्तम विवेक का भाषण कर। इस धर्मपत्नी की सन्तान उत्तम सुख में रहे। यह धर्म पत्नी अपना गृहस्थाश्रम उत्तम रीति से चलावे। यह धर्मपत्नी अपने पति के साथ सुख से रहे। जब इस तरह धर्म मार्ग से गृहस्थाश्रम चलाते हुए पति-पत्नी वृद्ध हो जाए तब वे दोनों उत्तम वचनों का उपदेश अपनी सन्तानों को दे।

अपि च-

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।।[11]

अर्थात् हे वधु! तू श्वशुर, सास, ननद और देवरों की सम्राज्ञी महारानी के सदृश होओ, सबके ऊपर प्रभुत्व कर।

इससे स्पष्ट होता है कि परिवार की व्यवस्था और संरक्षरण जैसी भूमिकाएँ एक परिपक्व स्त्री ही निभा सकती है, अतः बालिकाओं का विवाह बाल्यावस्था में किया जाना अव्यावहारिक था।

मनुस्मृति में भी बाल्यावस्था में विवाह करना वर्जित बताया गया है। इस विषय में मनु कहते हैं कि जो व्यक्ति विवाह में शीघ्रता करता है वह गृहस्थ धर्म में दुःख प्राप्त करता है।[12]

महाभारत में विवाह की उपयुक्त आयु लगभग १६ वर्ष के आसपास मानी गई है। आश्रमविधि पर्व में वर्णित प्रसंग के अनुसार जब उतंक ने विद्या समाप्ति के पश्चात् दक्षिणा का निवेदन किया[13] तो गौतम मुनि ने कहा कि यदि उतंक युवा अवस्था में होते, तो वे अपनी कन्या को उन्हें पत्नी रूप में प्रदान करते, क्योंकि कन्या के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु उतंक के तेज को धारण करने में समर्थ नहीं थी। बाद में युवा होकर उतंक ने ऋषि की कन्या को ग्रहण किया और दक्षिणा के रूप में उनके हितार्थ सर्वश्रेष्ठ रत्न प्रदान करने का संकल्प लिया।[14]

यह प्रसंग भी विवाह की परिपक्व आयु का ही संकेतित करता है, परन्तु वसिष्ठ एवं बोधायन धर्मसूत्र में इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि जो पिता ऋतुमती कन्या का तीन वर्ष के भीतर विवाह नहीं कर देता, वह निश्चय ही भ्रूण हत्या के समान पाप का भागी होता है।[15] यही वर्णन याज्ञवल्क्य[16] एवं नारद स्मृति[17] में भी प्राप्त होता है। इसी कारण कालान्तर में एक नियम सा बन गया कि कन्या का विवाह शीघ्र हो जाना चाहिए, भले ही वर गुणहीन ही क्यों न हो।[18] यद्यपि मनुस्मृति में इसका स्पष्ट प्रतिषेध भी मिलता है,[19] तथापि प्रतीत होता है कि परवर्ती विद्वानों ने धर्मसूत्र तथा पश्चातवर्ती स्मृति ग्रन्थों के प्रावधानों को ही अधिकाधिक ग्राह्य माना।

इन समस्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि बाल विवाह न तो भारतीय परम्परा का अंग रहा है और न ही शास्त्रों द्वारा समर्थित। यह पूरी तरह एक परवर्ती सामाजिक विकृति है। आधुनिक कानून और प्राचीन ग्रन्थ दोनों इस कुप्रथा को अनुचित बताते हैं।

इस प्रथा के उन्मूलन के लिए अनेक विधाओं के साहित्यकारों ने अपने काव्यों को माध्यम बनाया, जिनमें हिमाचल प्रदेश के कवि पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री भी एक हैं। काव्यकार पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री, जो राष्ट्र के आदर्शों और सामाजिक उत्थान के समर्थक कवि माने जाते हैं, वे देश में फैली हुई कुप्रथाओं में बाल विवाह को भी एक कुरीति मानते हैं जो राष्ट्र की उन्नति में बाधक सिद्ध होती है। उनके अनुसार यह कुप्रथा केवल एक सामाजिक परम्परा नहीं, अपितु एक ऐसी अविवेकी प्रवृत्ति है जो बालक के जीवन को अकाल में ही गृहस्थी के बंधनों में जकड़ देती है। अतः उन्होंने अपने महाकाव्य में इस प्रथा के दुष्परिणामों को अत्यन्त सूक्ष्मता और भावगाम्भीर्य के साथ प्रस्तुत किया है। ब्राह्मण की पत्नी द्वारा जब अपने पति के समक्ष अपने पुत्र जो अभी मात्र 13 वर्ष का था का विवाह प्रस्ताव रखा जाता है[20] तब वह ब्राह्मण उसकी आयु कम होने के कारण उस प्रस्ताव को अस्वीकार करता है।[21] परन्तु उसकी भार्या द्वारा महात्मा गांधी का दृष्टांत दिया जाता है जिनका विवाह भी अल्पायु में हुआ था[22] तब ब्राह्मण पिता अत्यन्त गूढ़ तर्क के साथ उत्तर देते हुए कहते हैं –

दिव्यात्मना त्वमात्मानं मेलयसि कथं प्रिये।
षट्त्रिंशद्धायने गान्धिरमजद ब्रह्मचारिताम्।।
तत आरभ्य कस्तूरां नास्पृशद् विषयेच्छया।
आमरणञ्च कस्तूरा छायेवानुससार तम्।।
किमस्ति हे प्रियेऽस्मासु संयमोऽद्य तथाविधः।
दम्पत्योः संयमः सत्यमृद्धि सिद्धि प्रदायकः।।
लोलुपा विषयाणंच भवेयुश्चेन्न मानवाः।
का चिन्ता सर्वकारस्य परिवारनियोजने।।[23]

अर्थात् पति बोला हे प्रिय ! तू उस दिव्य आत्मा से अपने पाप को क्यों मिलाती है। गान्धी जी ने छत्तीसवें वर्ष में ब्रह्मचर्य धारण कर लिया था। तब से लेकर गान्धी जी ने विषय की इच्छा से कभी कस्तूरा बाई का स्पर्श नहीं किया। वह मरणपर्यन्त छाया के समान गान्धी जी का अनुसरण करती रहीं। क्या आज हम में उस प्रकार का संयम है? पति-पत्नी का संयम सचमुच ऋद्धि-सिद्धि को देने वाला होता है। यदि मनुष्य इस प्रकार विषयों के पीछे भागने वाले न हों तो सरकार को परिवार नियोजन की चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है?

इस प्रकार वह पत्नी के विचारों का विवेकपूर्ण खण्डन करते हुए अल्पायु विवाह को समाज विघातक परम्परा के रूप में चिन्हित करता है।

कवि का मानना है कि युवा वर्ग ही राष्ट्र की ऊर्जा का वास्तविक स्रोत है। यदि उनका विवाह बाल्यावस्था में कर दिया जाए तो वें शिक्षा से वंचित होने के साथ-साथ सामाजिक एवं बौद्धिक रूप से भी जड़ हो जाते हैं। काव्य में ब्राह्मण पिता के माध्यम से कवि का यह विचार प्रतिपादित होता है। यथा–

पाणिग्रहणमेतस्य करिष्यामोऽधुनैवचेत्।
हे प्रिये महती वाधा स्वाध्यायेऽस्य भविष्यति ।।
शिक्षया च विना भार्ये सम्मानो नैव लभ्यते।
मैट्रिकानन्तरं तस्माच्छोभनं पाणिपीडनम्।।[24]

अर्थात् हे प्रिये! यदि आज ही इसका विवाह कर देंगे तो इसकी पढ़ाई में बहुत अड़चन होगी। हे श्रीमती! शिक्षा के बिना आदर प्राप्त नहीं होता है। इसलिए मैट्रिक के बाद ही विवाह करना अच्छा रहेगा।

बाल-विवाह पर पति की असहमति होने के पश्चात् भी पत्नी के पुनः पुनः आग्रह करने पर अंततः वह अपने पुत्र का विवाह ऋण लेकर करवा देते हैं।[25]

यहीं से इस प्रथा की त्रासदी आरम्भ होती है। कवि ने अत्यन्त मार्मिक शब्दों में मनोज के मानसिक पतन का चित्रण किया है। यथा–

अनन्तरं विवाहस्य मनोजः शिक्षणालयम्।

यदा गतस्तदा सर्वे बालास्तं पर्यवारयन् ।।
भो मनोज त्वयास्मभ्यं यदानीतं प्रयच्छ तत्।
व्यंच ज्ञातुमिच्छामो भार्यास्ति तवकीदृशी ।।
लज्जाशीलो मनोजस्तु न किंचिद् भाषितुं प्रभुः।
अभवत्पुरतस्तेषामतिष्ठन्नतलोचनः।।[26]

अर्थात् विवाह के बाद जब मनोज पाठशाला को गया तो सारे लड़के उसे घेर कर खड़े हो गए। अरे मनोज ! तुम हमारे लिए जो कुछ लाये हो वह हमें दे दो। हमें यह भी बताओ कि तुम्हारी पत्नी कैसी है। शर्मीले स्वभाव का मनोज कुछ भी नहीं कह सकता था। लड़कों के सामने आँखे नीचे करके बैठा रहता था।

अपि च-

उदासीनः सदातिष्ठन्मनोजस्तदनन्तरम्।
पठितुं क्रीडितुं भोक्तुं नैच्छन्मनो यथा पुरा ।।
अपृच्छदेकदा माता पुत्र मे कारणं वद।
तिष्ठसि त्वमुदासीनः किं ते मनसि वर्तते ।।
विवाहानन्तरं बाला भवन्ति हर्ष संयुताः।
पश्यामि नैव हर्षस्य चिह्नं ते मुख पंकजे।।[27]

अर्थात् उसके बाद मनोज सदा उदास ही रहता था। उसका मन पहले की तरह पढ़ने, खेलने और खाने में नहीं लगता था। एक बार उसकी माता ने पूछा कि हे पुत्र ! तुम उदास रहते हो इसका क्या कारण है, तुम्हारे मन में क्या बात है?

माता बोली हे पुत्र ! विवाह के बाद लड़के बहुत प्रसन्न दिखाई देते हैं। तेरे मुखड़े पर तो मैं कभी हर्ष की रेखा नहीं देखती हूँ।

माता के इस प्रकार पूछने पर वह संकोचपूर्वक कहता है-

तुदन्ति मां सखायो मे मातर्विद्यालये सदा।
पुनः पुनश्च पृच्छन्ति परिणयस्य मे कथाम् ।।[28]

अर्थात् है माता जी! पाठशाला में मेरे मित्र मुझे तंग करते हैं, वह बार-बार मुझसे मेरे विवाह की बातें पूछते हैं।

यह वाक्य उस आन्तरिक वेदना का प्रतीक है जो एक अल्पायु बालक को समाज के व्यंग्य और उपहास के रूप में झेलनी पड़ती है। बालक का मन अत्यन्त कोमल और संवेदनशील होता है, जब समाज या मित्र समूह उसके निजी जीवन पर व्यंग्य करता है, तब उसके मन में हीनभावना, संकोच और आत्मग्लानि का भाव घर कर लेता है। पुत्र के ऐसा कहने पर माता प्रतिक्रिया देते हुए कहती है–

पितरं ते प्रहेष्यामि पुत्र प्रातस्त्वया सह।
प्रक्ष्यति स तवाचार्यं तुदन्ति त्वां किमुद्धवाः।।[29]

अर्थात् हे पुत्र ! मैं कल तेरे पिता को तेरे साथ भेजूंगी। वह तुम्हारे अध्यापक से पूछेंगे कि शरारती लड़के आपको क्यों तंग करते हैं।

यह उस सामाजिक अनभिज्ञता को उजागर करती है, जिसमें परिवारजन भी बालक के मनोवैज्ञानिक संकट की गहराई को नहीं समझ पाते।

रात्रि में मनोज का नींद से वंचित रहना तथा इसका विचलित मन[30] यह दर्शाता है कि बाल-विवाह से उसकी मानसिक शान्ति पूर्णतः भंग हो चुकी है। इधर नानी का प्रतीक्षा करते-करते प्राण त्याग करना इस त्रासदी को और भी करुण एवं गहन बना देता है। उनका यह स्वप्न कि विवाहोपरान्त नाति वधू सहित उनके गृह पधारेगा अधूरा रह जाता है,[31] परिणामस्वरूप इस प्रथा से व्यथित होकर मनोज द्वारा गृह त्याग करना[32] उसकी उस अवस्था को द्योतित करता है। जहाँ बाल-विवाह केवल विवाह नहीं, बल्कि बाल-मन पर थोपे गए सामाजिक बन्धन और उत्तरदायित्व का असमय बोझ है।

कवि के अनुसार बाल विवाह व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक सामाजिक, शैक्षिक व भावनात्मक इन चार स्तरों पर प्रभावित करता है। मनोवैज्ञानिक रूप से यह बालक के मन में भय, लज्जा और आत्मग्लानि उत्पन्न करता है। सामाजिक रूप से यह उसे उपहास और तिरस्कार का पात्र बना देता है। शैक्षिक रूप से यह उसकी अध्ययनशील प्रवृत्ति को नष्ट कर देता है। भावनात्मक रूप से यह परिवार की आशाओं और सम्बन्धों को विखंडित कर देती हैं।

इस प्रकार, पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री ने बाल-विवाह को एक ऐसी मानसिक एवं सामाजिक व्याधि के रूप में प्रस्तुत किया है जो न केवल व्यक्ति की उन्नति में, बल्कि राष्ट्र के भावी निर्माण में बाधक सिद्ध होती है। यहां कवि का उद्देश्य इस यथार्थ को उद्घाटित कर समाज को जागरूक करना है कि राष्ट्र की सुदृढ़ नींव तभी रखी जा सकती है जब बाल्यावस्था को शिक्षा और संस्कार का काल माना जाए, न कि विवाह का।

कवि आगे यह भी स्पष्ट करते हैं कि बाल-विवाह का दुष्प्रभाव केवल मानसिक नहीं, आर्थिक स्तर पर भी विनाशकारी है। निर्धन परिवार सामाजिक प्रतिष्ठा या परम्परा के नाम पर ऋण लेकर बाल-विवाह करवा देते हैं और फिर वही ऋण उनके जीवन का अभिशाप बन जाता है। शास्त्री जी का यह चित्रण अत्यन्त यथार्थपरक है-

प्रत्यहमुत्तमर्णश्च विप्रस्य गृहमाययौ।
देहि विप्र धनं शीघ्रं भूमिं वा न्यस्य मे करे।।
नेहसे कर्तुमेतत्त्वं भूषणानि प्रदेहि मे।
वध्वाश्च तान्यहं हट्टे लप्स्ये विक्रीय मे धनम् ।।[33]

अर्थात् कर्ज देने वाला साहूकार प्रतिदिन उस ब्राह्मण के घर आता था और कहता था कि अरे ब्राह्मण, मेरा पैसा दे दो। यदि नहीं दे सकते हो तो अपनी जमीन मेरे पास रख दो। यदि तुम जमीन को भी नहीं रखना चाहते हो तो बहुटी के भूषण उतार कर मुझे दे दो, मैं दुकान पर बेचकर अपना पैसा पूरा कर लूँगा।

यह संवाद समाज के इस भीषण सत्य को उद्घाटित करता है जहाँ अंधी परम्परा और निर्धनता मिलकर व्यक्ति की स्वतन्त्रता का गला घोंट देती है।

किसी भी राष्ट्र को सशक्त बनाने के लिए सामाजिक तथा राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ आर्थिक स्वतन्त्रता का होना भी आवश्यक है, परन्तु निर्धनता देश की आर्थिक व्यवस्था को कमज़ोर बना देती है। अतः कवि निर्धन व्यक्ति द्वारा ऋण लेकर शादी करवाने की कड़े शब्दों में निदा करते हैं। क्योंकि कर्ज में बंधा व्यक्ति कभी भी स्वतंत्र रूप से अपना जीवन यापन नहीं कर सकता। कवि ऋण लेने वाले लोगों की स्थिति का चित्रण करते हुए कहते हैं-

ऋणीनां जीवनं लोके भवति दुःखदायकम्।
आदातव्यमृणं तैर्न स्वसुमिच्छन्ति ये सुखम् ।।[34]

अर्थात्– ऋणियों का जीवन संसार में बहुत दुःखदायी होता है। जो लोग सुख की नींद सोना चाहें उन्हें कर्ज नहीं लेना चाहिए।

अतः कवि ने अपने काव्य के माध्यम से यह प्रमाणित किया है कि अल्पावस्था में विवाह जैसी प्रथाएँ व्यक्तिगत जीवन की विडंबना के अतिरिक्त राष्ट्र की आत्मा को भी दुर्बल करती है; क्योंकि शिक्षा से वंचित, ऋण में जकड़ा, मानसिक रूप से अपरिपक्व युवा कभी राष्ट्र का निर्माता नहीं बन सकता।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि बाल-विवाह भारतीय संस्कृति की मूल आत्मा या शास्त्रीय परम्परा का अनिवार्य अंग नहीं रहा है, अपितु यह एक परवर्ती सामाजिक विकृति है, जिसने व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक संरचना और राष्ट्र की उन्नति तीनों को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है। प्राचीन साहित्य के प्रमाण यह संकेत करते हैं कि विवाह के लिए शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक परिपक्वता को आवश्यक माना गया था। अतः अल्पायु में विवाह को शास्त्रसम्मत ठहराना न तो तर्कसंगत है और न ही तथ्यात्मक।

संदर्भ ग्रंथ

1 समाजशास्त्र के सिद्धांत, पृष्ठ– 334

2 शारदा एक्ट अथवा बाल विवाह निषेधक कानून, ग

3 वही, घ

4 वही,पृष्ठ– 2

5 वही, पृष्ठ– 2

6 वही, पृष्ठ– 7

7 वही, पृष्ठ– 25

8 ECONOMIC IMPACT OF CHILD MARRIAGE : GLOBAL SYNTHESIS REPORT, Page –12

9 कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण।
भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः स्वयं सा मित्रं यनुते जने चित् ।। ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, 10.27.12

10 वही,10.85.26– 27

11 ऋग्वेद का सुबोध भाष्य,10.85.46

12 त्रिंशद्वर्षेद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षी वा धर्मे सीदति सत्वरः।। मनुस्मृति, 9.94

13 गुर्वर्थ कं प्रयच्छामि ब्रूहि त्वं द्विजसत्तम ।
तमुपाहृत्य गच्छेयमनुज्ञातस्त्वया विभो।। महाभारत, 14.56.20

14 इत्थं च परितुष्टं मां विजानीहि भृगूद्वह।
युवा पोडशवर्षो हि यद्यद्य भविता भवान्।।
ददानि पत्नीं कन्यां च स्वां ते दुहितरं द्विज।
एतामृतेऽङ्गना नान्या त्वत्तेजो ऽर्हति सेवितुम् ।।
ततस्तां प्रतिजग्राह युवा भूत्वा यशस्विनीम्।
गुरुणा चाभ्यनुज्ञातो गुरुपत्नीमथा ऽब्रवीत् ।। महाभारत, 14.56.22-24

15 1) त्रीणि वर्षाण्यृतुमतीं यः कन्यां न प्रयच्छति।
स तुल्यं भ्रूणहत्यायै दोषमृच्छत्यसंशयम्।। बोधायन धर्मसूत्र, 4.1.13 2)
2)प्रयच्छेन्नग्निकां कन्यामृतुकालभयात्पिता।
ऋतुमत्यां हि तिष्ठन्त्यां दोषः पितरमृच्छति ।। वसिष्ठधर्मसूत्र, 17.70

16 अप्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ।
गम्यन्त्वभावे दातृणां कन्या कुर्यात्स्वयंवरम्।। याज्ञवल्क्यस्मृति, 1.64

17 अतोऽप्रवृत्ते रजंसि कन्यां दद्यात् पिता सकृत्।
महदेनः स्पृशेदेनमन्यथैवं विधिः सताम् ।। नारदस्मृति, 12.27

18 अविद्यमाने सदृशे गुणहीनमपि श्रयेत्।
गुणा अभिजनादयो न जातिः।। बोधायन धर्मसूत्र, 4.1.16

19 काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यापि।
नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्।। मनुस्मृति, 9.89

20 किन्नोद्वाहं करोषि त्वं पुत्रस्य वद मे पते।
भवावो जरठावावां समयं कं प्रतीक्षसे।। राष्ट्रपथप्रदर्शन, 8.2

21 प्रिये सप्तम कक्षायां पुत्रः पठति साम्प्रतम्।
आयुस्त्रयोदशाव्दानां शीघ्रतां त्वं करोषि किम् ।। वही, 8.9

22 गान्धिस्त्रयोदशे वर्षे पित्रा विवहितोऽभवत्।
अवस्था मम पुत्रस्य विवाहे वाधका कथम्।। वही,8.10

23 वही,8.11– 14

24 वही,17– 18

25 तथ्येनैव विजानासि हठं करोषि भामिनि।
इच्छसि चेदवश्यं त्वं दर्शय में धन क्वचित्।।
आभूषणानि मे सन्ति वध्वै दास्यामि तान्यहम्।
कार्य ऋण-प्रवन्यश्च प्रत्यावर्तिष्यते शनैः।। वही, 17.27

26 वही,8.37– 39

27 वही, 8.43– 45

28 वही 8.47

29 वही,8.48

30 एवमुक्त्वा गता माता पुत्रस्तु निजकक्षके।
नाशेत सकलां रात्रि मासीत्स क्षुब्ध मानसः ।। राष्ट्रपथप्रदर्शन, 8.49

31 मातामही प्रतीक्षायां प्राणांस्तत्याज वेश्मनि।
विवाहानन्तरं नप्ता वध्वा सहागमिष्यति।। राष्ट्रपथप्रदर्शन, 8.50

32 अद्यावधि न केनापि मनोजो लक्षितो गृहे।
नाङ्गणे पाठशालायां न च मातामही गृहे।। वही, 8.51

33 वही,8.52– 53

34 वही,8.30